कृषक समाज के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य

डॉ. बलवीर सिंह अभय
सह आचार्य समाजशास्त्र
राजकीय महाविद्यालय नीमकाथाना (सीकर)

सारांश

यह अध्ययन कृषकों के सामाजिक-आर्थिक पार्श्वचित्र को प्रस्तुत करता है । इस अध्ययन में ग्रामीण परिदृश्य से सम्बन्धित कृषकों की आयु संरचना, जातिगत स्थिति, वैवाहिक स्थिति, निवास क्षेत्र, व्यवसाय, सांस्कृतिक परिवेश एवं भौतिक दशा, आय आदि को जानने का प्रयास किया गया है । सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य, व्यक्ति के उद्देश्यों, जीवन उपलब्धियों के अवसरों, मनोवृत्तियों, महत्वाकांक्षाओं, मूल्यात्मक प्रवृत्तियों तथा जीवन के प्रगति के अवसरों के निर्धारण में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । इसी तथ्य की विवेचना टी.पारसन्स सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक व्यवस्था एवं व्यक्तित्व व्यवस्था के स्तर को लेकर किया है। कार्लमेनहीम ने व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्धारण में सामाजिक परिदृश्य को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है । सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य और आधुनिक तकनीकी संसाधन व आविष्कार, व्यक्ति के चितंन में महत्त्वपूर्ण होते हैं।

मुख्य शब्द: कृषक समाज, व्यवसाय, सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक व्यवस्था, व्यक्तित्व व्यवस्था, सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य

प्रस्तावना

ग्रामीण पृष्ठभूमि में भी स्वास्थ्य, संस्कृति, रोग सम्बन्धी मूल्य और विश्वास रोगी के व्यवहार तथा उपाचार निर्धारण में व्यक्ति की सामाजिक-आर्थिक दशाओं से सम्बन्धित विशेषतायें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। मैथ्यूज ने अपने अध्ययन में इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि सामाजिक परिदृश्य और सांवेगिक दशाओं का उनकी रोग मुक्ति प्रक्रिया से अत्यधिक सम्बन्ध है । आधुनिक और परम्परागत समाजों में सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि में अन्तर देखने को मिलता है तथापि सरल और परम्परागत समाजों में आयु, लिंग, नातेदारी सम्बन्ध तथा जातिगत् एवं पारिवारिक स्थिति का अन्तर, स्वास्थ्य की दशाएं, रोगी का व्यवहार, उपचार की विधि तथा स्वास्थ्य संस्कृति से सम्बन्धित धारणाओं और विश्वासों को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण है । आधुनिक समय में विकसित समूहों के सम्पर्क व विभिन्न जातीय सदस्यों का एक ही निवास स्थान क्षेत्र में सहवास, शिक्षा, आधुनिकीकरण, नगरीकरण के कारण व्यक्ति के सामाजिक पार्श्वचित्र में शैक्षणिक उपलब्धि, आय, व्यवसाय, भूमि स्वामित्व का महत्त्व बढ़ता जा रहा है ।

अनेक समाजशास्त्रियों यथा दुर्खीम (1912) , सारोकिन (1926), ' एण्डरसन (1961), श्रीनिवास (1966), 8 तथा राव (1960) ने अपने अध्ययनों के उपरान्त इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि सामाजिक-आर्थिक पर्श्वचित्र, सामाजिक गतिशीलता, नवीन चिन्तन धारा, विकास, परिवर्तन और मानवीय व्यवहार को महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करता है। किसी भी शोध समस्या के अध्ययन में उत्तरदाताओं के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य के सम्बन्ध में तथ्यों का ज्ञान अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है । इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्याय में उत्तरदाताओं के सामाजिक-आर्थिक पार्श्वचित्र से सम्बन्धित आयु संरचना, वैवाहिक, पारिवारिक स्थिति, भूमि स्वामित्व, कृषि उपकरणों की उपलब्धता एवं संतोष की स्थिति का विवेचन किया गया है । विभिन्न सारणियों में प्रदर्शित तथ्यों का विश्लेषण इस प्रसंग उपयोगी होगा ।

कृषक समुदायों के सामाजिक-आर्थिक जीवन से सम्बन्धित परिदृश्य का अवलोकन तथा तथ्यों के विश्लेषण से परिलक्षित होता है कि बहुसंख्यक कृषक 41 से 51 वर्ष आयु समूह के पाये गये । प्रायः बहुसंख्यक विवाहित एवं एकांकी

परिवार से जुड़े हैं । कृषि के साथ अन्य व्यवसायों के प्रसंग में पाया गया कि बहुसंख्यक कृषकों का कृषि के साथ नौकरी और व्यापार का समायोजन है, केवल मात्र कृषि पर आधारित किसानों का प्रतिशत कम रहा ।

कृषकों में बहुसंख्यक लोग पिछड़ी व अनुसूचित जाति (निम्न जाति) के मिले, सामान्य एवं उच्च शिक्षित प्रतिशत अपेक्षतया कम रहा। समस्त स्त्रोतों से आय सम्बन्धी तथ्य से यह अभिज्ञात होता है कि बहुसंख्यक कृषकों की मासिक आय 1000-3000 रूपये के मध्य है । भूमि स्वामित्व के प्रसंग में पाया गया कि बहुसंख्यक लोग 6 बीघे से लेकर 15 बीघे तक भूस्वामित्व से युक्त हैं । कृषि उपकरणों का जहाँ तक प्रश्न है, इस सन्दर्भ में यह पाया गया कि ज्यादातर तकनीकी कृषि साधनों का अभाव है। खेती के लिए बहुसंख्यक लोग भुगतान के आधार पर ट्यूबवेल, टैक्ट्रर, पम्पिंग सेट इत्यादि का प्रयोग कृषि कार्य में करते हैं, फिर भी अपेक्षाकृत बैलों से कृषि कार्य एवं जुताई का काम कम हुआ है। जहाँ तक जीवन में वित्तीय संकट का प्रश्न है, प्रायः यह पाया गया कि बहुसंख्यक उत्तरदाता वित्तीय संकट का सामना अतिरिक्त कार्य करके करते हैं तथा साथ ही साथ कर्ज द्वारा और सम्पत्ति गिरवी द्वारा क्रमश: (31) और (18.0) प्रतिशत कृषक वित्तीय संकट का समाधान करते हैं। भूमि के आधार पर संतुष्टि की दर में पाया गया कि जैसे-जैसे भूमि की मात्रा में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे संतुष्टि की दर में भी वृद्धि हो जाती है ।

सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन-शैली किसी समाज की यथास्थिति और उसकी गत्यात्मकता का निर्धारण करती है । यह दोनों ही परिदृश्य समाज की सभ्यता व उसके सांस्कृतिक इतिहास से सम्बद्ध हैं। समाज की संस्कृति और व्यक्तियों की धार्मिक प्रतिबद्धता समाज की दीर्घयात्रा का द्योतक हैं ।

सामाजिक क्रिया का तात्पर्य उन क्रिया-कलापों से है जो किसी लक्ष्य या उद्देश्य से उन्मेषित होते हैं (टी. पारसन्स, 1937, 1962) सामान्य रुचियाँ, क्रिया-कलाप एवं धार्मिक प्रतिबद्धता समाज एवं व्यक्ति दोनों के ही लिए महत्त्वपूर्ण है । रुचि का सामान्यतया अर्थ व्यक्ति को अपनी अच्छाई या इसके समूह के अच्छाई सम्बन्धी इच्छाओं से किया जाता है । (मेरी ए नील, 1965) । सांस्कृतिक क्रिया-कलापों में एवं धार्मिक प्रतिबद्धता में संचार साधनों से सम्पर्क स्तर, सांस्कृतिक क्रिया-कलापों में सहभागिता, धार्मिक प्रतिबद्धता, अवकाश के समय का उपयोग, अस्पृश्यता की भावना जैसे तथ्यों को सम्मिलित किया जा सकता है (डिसूजा विक्टर, 1975) ।

संचार साधन आधुनिक युग का महत्त्वपूर्ण अंग है। वर्तमान तकनीकी औद्योगिक विकास की दौड़ में क्रियाशील समाजों के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक अस्तित्व के लिए संचार साधनों तथा सूचना स्त्रोतों का विशेष महत्त्व है (पी.एल.डब्ल्यू. 1963) | सूचना सम्प्रेषण व्यक्ति की राजनैतिक जागरूकता, ज्ञान, मूल्य तथा अभिवृत्तियों के पारस्परिक आदान-प्रदान के सन्दर्भ में अत्यन्त आवश्यक है । (दास, ए.के.1968) | सम्प्रेषण में मुख्य दो प्रकार के साधन हैं । एक प्रत्यक्ष जिनमें समाचार-पत्र, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा आदि को लिया जाता है और दूसरे अप्रत्यक्ष जिनमें साक्षरता, भ्रमण, समूह संगठन, सहभागिता को लिया जाता है । प्रत्यक्ष साधन महत्त्वपूर्ण स्त्रोत् हैं जो व्यक्ति को अपने आसपास की सामाजिक वास्तविकताओं को समझाने में सहायक होते हैं । यह व्यक्ति को विभिन्न चिन्तन प्रणाली, आदत, व्यवहार, सामाजिक अस्तित्व तथा सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में अधिक सहभागिता के लिए प्रेरित करता है। इसके द्वारा व्यक्ति इन परिस्थितियों और जीवन-शैली के विविध रूपों के विषय में अवगत होता है, जो उसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अनुभव की जाने वाली जीवन-शैली और परिस्थितियों से भिन्न होती । यह स्थिति उन्हें परिवर्तन की दिशा की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करती है (लर्नर, 1957, लर्नर, 1964, कोलमैन, 1969) | सम्प्रेषण के साधन समाज के मूल्यात्मक विकास पर आधारित हैं । सम्प्रेषण आर्थिक विकास स्तर, समाज की एकता और पृथक्करण को प्रदर्शित ही नहीं करते हैं, अपितु उसकी राजनैतिक प्रक्रियाओं को भी प्रतिबिम्बित करते हैं (स्क्रम विलवर, 1964) भारत जैसे विकासोन्मुखी सामाजिक संरचना में संचार सम्प्रेषण जन-समुदाय की जागरूकता, चेतना तथा सामान्य दिशा का आधार ही न होकर पिछड़े तथा

अनुसूचित जातियों के सन्दर्भ में उनके उत्कर्ष सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं में महत्वपूर्ण योगदान देता है । संचार सम्प्रेषण राजनीतिक सामाजीकरण का एक प्रमुख आधार है । (हिक्स और अन्य, 1975) ।

भारतीय सन्दर्भ में समाजशास्त्रियों ने जहाँ इसे आधुनिकता एवं सामाजिक, मनोवैज्ञानिक गतिशीलता का सृजन स्त्रोत् माना है, वहीं पर इन्हें जातीय तथा परम्परागत् प्रक्रियाओं के संगठन में दृढ़ता लाने का भी आधार माना है (श्रीनिवास, एम.एन, 1962)18 | भारतीय सन्दर्भ में सम्प्रेषण के साधनों के आधुनिकीकरण ने परम्परा और आधुनिकता के मध्य सांस्कृतिक विसंगति को जन्म दिया है (सिंह, वाई, 1973) । यही नहीं, आधुनिक भारत में संचार सम्प्रेषण साधनों को सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन-शैली के परिष्कार, राजनीतिक चेतना, नवीन विचारों, व्यवहारों तथा समूह सहभागिता के प्रभावी कारक के रूप में पाया गया है (राबर्टस 1974, भाम्भरी - 1973, गोयल-1973) ।

मानवीय व्यवहार को समझने की दिशा में समाजशास्त्रियों ने धर्म के महत्त्व को मान्यता प्रदान की है (स्टेनली, जी.एच.- 1965) ने अमेरिकी पृष्ठभूमि के अध्ययन में यह पाया कि धार्मिक प्रतिष्ठता मनुष्य की अभिवृत्तियों एवं व्यवहारों को उतना ही प्रभावित करती है जितनी वर्ग संरचना । प्रजाति के पश्चात् वैवाहिकता **से** सम्बन्धित सभी पुरूष को स्वीकृत या अस्वीकृत वर्गों में विभक्त करने वाला निर्णायक कारक धर्म है। भारतीय संस्कृति व सभ्यता अपने विशिष्ट धर्म व धार्मिक कर्मकाण्डीय ज्ञान के लिए विख्यात है । दैनिक जीवन व सामाजिक सम्बन्धों में जो सिद्धान्त अपनाया जाता है वह धर्म है। धर्म के अन्दर वे सभी स्वरूप व कार्यकलाप आ जाते हैं जो मानव जीवन को निर्मित व जीवित रखते हैं। मानव की विशिष्ट एवं विभिन्न रुचियों, इच्छाओं, विरोधी आवश्यकताओं आदि में सामंजस्य करना धर्म का प्रकार्य है । यह पारलौकिक निर्दिष्ट ही नहीं है, वरन् समस्त लौकिक व अस्तित्वमूलक प्रक्रिया से सम्बद्ध है । धर्म का मानवशास्त्रीय विश्लेषण बौद्धिक नैतिक परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन के प्रति संवदेनशील रहा है । (राधाकृष्णन, एस- 1974) । एस-1974) धर्म की पूर्णतया तटस्थ वैज्ञानिक व्याख्या नहीं की जा सकती। धर्म और आधुनिकीकरण को भारतीय सन्दर्भ में स्पष्ट करने में कई अवधारणात्मक, सैद्धान्तिक, विधिमूलक व अनुभवजन्य कठिनाइयाँ हैं । मुख्यतः धर्म को आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक माना जाता है, क्योंकि इसे वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति एवं वैचारिकी का विरोधी माना जाता है । (सिंह, हरिवंश - 1969) भारतीय धर्म का इतिहास प्राचीन है एवं सामान्य व विशिष्ट धर्म में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। धार्मिक विश्वासों का युगानुकूल आधुनिकीकरण होता रहा है। श्री निवास ने धर्म को संस्कृतिकरण के गत्यात्मक स्त्रोत् के रूप में व्यक्त किया है (श्रीनिवास, एम. एन. 1966) मिल्टन सिंगर (1966) ने 'कम्पार्टमेन्टालाइजेशन' की प्रक्रिया द्वारा गत्यात्मक निरन्तरता की प्रक्रिया को स्पष्ट किया है। मैक्स वेवर की इस अवधारणा का कि धर्म प्रगति में बाधक (वेल्लाह -1955) और (दूबे, एस.सी. 1967) ने आलोचनात्मक प्रतिपादन किया है कि भारत में धर्म प्रगति में बाधक नहीं कहा जा सकता। धर्म की संरचना और अन्तर्निहित प्रक्रियाएँ बहुविधि एवं बहुआयामी रही हैं जो लघु सरिताओं एवं झरनों की तरह स्थानीय व क्षेत्रीय रूप में प्रवाहित होने के बावजूद भारतीय धार्मिक व सांस्कृतिक परम्परा के विशाल समुद्र में समाविष्ट हो जाती हैं ।

भारतीय समाज में जातीय स्तर पर सर्वाधिक असमानताएँ और निर्योग्यताएँ पायी जाती रहीं हैं। अस्पृश्य जातियाँ – जिन्हें अब अनुसूचित जाति द्वारा सम्बोधित किया जाता है, इन लोगों को सांस्कृतिक श्रेष्ठता एवं हीनता की भावना के अन्तर्गत द्विज जातियों से व्यवहार सम्बन्धी अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध विद्यमान थे । छूआछूत की भावनाओं को केन्द्र मानकर इन जातियों के साथ खाने-पीने, उठने-बैठने, मंदिरों में जाने तथा सार्वजनिक सुविधाओं के उपयोग करने की बात तो दूर, उनकी छाया को भी अपवित्र माना जाता था । स्वतंत्रता के पश्चात अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम (1955) के अन्तर्गत इसे दण्डनीय अपराध घोषित किया गया, परन्तु विविध अध्ययन जो किये गये हैं यथा मुमताज अली (1980), लिन्च, ओ.एम. (1969)28, देसाई आर.पी. (1976), पाण्डेय पी. एन. (1988) उद्घाटित हुआ है कि भारतीय ग्रामीण समाज में छुआछूत अभी भी गम्भीर रूप में विद्यमान है ।

विकास कार्यो एवं जनसंचार माध्यम के सामान्य प्रेषण के साथ कृषकों की अभिवृत्तियों और उन्मेषों का एक सामान्य पर्यवेक्षण करने पर परिलक्षित होता है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रम के दौर में चेतनात्मक जागृति बढ़ी है और ग्रामीण जनता का लगाव भी सरकार के विकास कार्यक्रमों से हुआ है, फिर भी परिणाम अपेक्षित संतोष स्तर के नहीं हैं । इसका कारण परिस्थतिक है। जैसे दैनिक स्तर पर समाचार-पत्रों की सुलभता का अभाव, वृद्ध पीढ़ी में साक्षरता के अभाव के कारण समाचार-पत्रों के प्रति उदासीन होना । रेडियो और टेलीविजन के विकासमूलक प्रसारण कार्यक्रमों में सभी आयु समूह के लोगों की रूचिकर संलग्नता इस बात का प्रतीक है कि सामाजिक-आर्थिक विकास एवं सम्पन्नता का स्तर बढ़ा है । फलतः ग्रामीण जनता का प्राविधिक उपकरणों व संसाधनों के उपयोगात्मक पहलू की तरफ झुकाव हुआ है और इन कार्यक्रमों में रूचि रखने लगे हैं। अशिक्षितों की तुलना में मध्यस्तरीय और उच्च शिक्षा प्राप्त ग्रामीण जनता का उन्मेष रेडियो, टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रति अधिक दिखाई पड़ा है।

चलचित्रों के प्रदर्शन के प्रश्न पर यह पाया गया कि मध्यस्तरीय शिक्षा प्राप्त लोग कभी-कभी देखने की रूचि रखते हैं, जबकि उच्च शिक्षितों में प्रायः देखने की प्रवृत्ति पाई गयी । चलचित्र की यह रूचि भी ग्रामीण जनता में विशेषकर बहुसंख्यक रूप से 50 वर्ष से पूर्व की आयु समूह वाले अर्थात् युवा और प्रौढ़ोत्तर आयु वाले लोगों में ही अधिक है । वृद्ध पीढ़ी का लगाव नगण्य है । अवकाश के क्षणों के उपयोग के प्रसंग में यह पाया गया कि प्रायः उच्च शिक्षा युक्त लोग ही जिनकी ग्रामीण जनसंख्या भी कम होती है, अवकाश के क्षणों का उपयोग मनोरंजन साधनों से करते हैं, अन्यथा अशिक्षित और मध्यस्तरीय शिक्षा के लोग अपने अवकाश क्षण भी कृषि दिनचर्या में व्यतीत कर देते हैं। आय के आधार पर भी इस प्रसंग में ऐसे ही परिणाम देखने को मिले हैं, अर्थात् उच्च आयु समूह के लोग ही अवकाश काल का उपयोग मनोरंजन हेतु करते हैं । लघु आयु समूह के लोगों का सम्पूर्ण समय कृषि दिनचर्या से ही जुड़ा है ।

धार्मिक आस्था और क्रिया-कलापों में सहभागिता के सन्दर्भ में यह पाया गया कि धार्मिक आस्था विश्वास, पूजापाठ आदि में युवा पीढ़ी की तुलना में वृद्ध पीढ़ी की ही अधिक संलग्नता है। स्वाभाविक भी है और इसे एक समाजशास्त्रीय तथ्य के रूप में रखा जा सकता है कि युवा पीढ़ी नवीनता और आधुनिकता की पोषक **है**, नवीन मूल्यों और विचारों से प्रभावित है, जबकि वृद्ध पीढ़ी स्वभावतः परम्परापोषक और धर्मोन्मुख होती है।

छूआछूत के प्रसंग पर सर्वेक्षण में लिये गये उत्तरदाताओं की मनोवृत्तियों का विश्लेषण करने पर परिलक्षित होता है कि विज्ञान, तकनीकी, शिक्षा और तर्कसंगत, मूल्यों के प्रसारण तथा सरकार द्वारा संचालित प्रसार प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा छूआछूत के अभ्यास और व्यवहार में काफी कमी आई है, फिर भी स्थिति बहुत संतोषप्रद नहीं है, क्योंकि ग्रामीण जनजीवन में वृद्ध पीढ़ी के सदस्यों का ही बहुधा बाहुल्य है । उच्च शिक्षा प्राप्त युवा वर्ग गांवों से निष्क्रमित होकर नगरों में वेतन भोगी नौकरियों से जुडता जा रहा है । स्वाभाविक है कि वृद्ध पीढ़ी, परम्पराओं एवं अन्धविश्वासों के प्रति अपनी निष्ठावान भावना का पूर्णतः परित्याग नहीं किया है। फलतः छूआछूत की स्थिति अभी सामान्य है । जो भी ग्रामीण जनजीवन **में** युवा वर्ग है, यद्यपि अल्पसंख्यक हैं और उनमें सर्वाधिक छूआछूत के प्रति उदासीनता का अपेक्षित परिवर्तन प्रकट हुआ है । इस सन्दर्भ में छुआछूत की भावना और व्यवहार शिक्षित और उच्च शिक्षितों की तुलना में अशिक्षितों में ही सर्वाधिक है ।

मानव सभ्यता का विकास पर्यावरण केसाथ अनुकूलन और अभियोजन से होता है । संस्कृति एवं सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने अपने पर्यावरण को अपनी आवश्यकतानुसार प्रयोग करते हुए परिवर्तित किया है। पर्यावरण की सामान्य विशेषताओं के अनुरूप मानव संस्कृति और सभ्यता ने नवीन स्वरूप और दिशा विकसित की है। पर्यावरण मानव के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का एक आवश्यक अंग ही नहीं, एक आवश्यक सामाजिक मूल्य भी बन गया है ।

पर्यावरण की अवधारणा एक जटिल अवधारणा है। पर्यावरण के अन्तर्गत केवल वायु, जल एवं भूमि जैसे तत्त्व सम्मिलित नहीं हैं, वरन् इसके अन्तर्गत वे सामाजिक एवं आर्थिक दशायें भी सम्मिलित हैं, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति निवास

करता है। मानव समूह के निकट पर्यावरण, भौतिक दशाओं एवं पर्यावरण का स्वास्थ्य एवं रोग से अत्यधिक सम्बन्ध है । सामान्य रूप से मनुष्य जैवकीय प्रजनन प्रक्रिया की तुलना में अपने भौतिक-सामाजिक पर्यावरण से अधिक प्रभावित है। व्यक्तियों के स्वास्थ्य का निर्धारण उनकी प्रजाति द्वारा नहीं, अपितु जीवन की दशाओं द्वारा होता है । रोग मानव का पर्यावरण के साथ असफल नियोजन है ।

भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत जलवायु, सूर्य का प्रकाश, भूमि, आवास तथा अनेकों गंदी वस्तुओं के विसर्जन की सुविधाएँ तथा विकिरण आदि सम्मिलित हैं। सामाजिक पर्यावरण के अन्तर्गत सांस्कृतिक मूल्य, प्रथाएँ, आदतें, अभिवृत्तियों, नैतिकता, धर्म, शिक्षा, व्यवसाय, रहन-सहन का स्तर, सामुदायिक जीवन, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता तथा सामाजिक और राजनीतिक संगठन आदि सम्मिलित हैं। आधुनिक दृष्टिकोण से रोग की उत्पत्ति व्यक्ति और उसके पर्यावरण के पारस्परिक संतुलन में बाधा उत्पन्न होने से होती है । भारत तथा अन्य विकासशील देशों में अनेक प्रकार की व्याधियाँ, पर्यावरण सम्बन्धी दोषों से उत्पन्न हो रही हैं । प्रथम वस्तुतः व्यक्ति का स्वास्थ्य दो परिस्थितिकीय पर्यावरणों का समय व्यक्ति का आन्तरिक पर्यावरण तथा द्वितीय वह पर्यावरण जिसमें व्यक्ति निवास करता है । इन दोनों पर्यावरण की परस्पर अन्तःक्रिया तथा समन्वय द्वारा व्यक्ति की स्वास्थ्य स्थिति का निर्धारण होता है । जिस स्थान पर निवास करता है। भौतिक, जैवकीय और सांस्कृतिक दशायें पारस्परिक अन्तर्क्रिया द्वारा व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं । समकालीन भारतीय ग्रामीण समाज में पर्यावरण व भौतिक दशाओं **की** स्थिति अत्यन्त ही चिन्तनीय रही है। अशिक्षा, अज्ञानता, परम्परागत मान्यतायें और निम्न आर्थिक स्थिति इसके प्रमुख कारण रहे हैं | इस अध्याय के अन्तर्गत आवास, जीवन-यापन सम्बन्धी सुविधाएँ, साधनत्व पेयजल, जल निकास भोज्य पदार्थ की प्रकृति द्रव्य व्यसन पर उत्तरदाताओं की प्रतिक्रियाएँ ग्रहण की गई हैं ।

इस सन्दर्भ में कृषकों की प्रतिक्रियाओं को मूलभूत रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है कि अधिकतर कृषकों के रहन-सहन का स्तर निम्न है। मकान के स्वरूप पर आधारित तथ्यों के विश्लेषण से यह परिलक्षित होता है कि अधिकतर लोग कच्चे मकानों में रहते हैं, परन्तु उपर्युक्त तथ्य का विश्लेषण भूमि और आय के आधार पर करने पर परिलक्षित होता है कि 20 बीघे या इससे अधिक जमीन वाले कृषक 90.0 प्रतिशत पक्के मकानों में रहते हैं और 4000 रुपये प्रतिमास या इससे ऊपर वाले कृषक 70.0 प्रतिशत पाये गये। पर्यावरण से सम्बद्ध शौचालय, साधनत्व पेयजल, बर्तनों के रख-रखाव के तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि अधिकांश कृषकों के पास न तो शौचालय की व्यवस्था है, न ही अच्छे किस्म के बर्तन जिन्हें वे ढककर अथवा अन्य प्रकार से पीने वाले बर्तनों को स्वच्छ रख सकें ।

परन्तु यह भी विदित है कि उच्च आय समूह के कृषकों के उपर्युक्त वर्णित स्वरूप में भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। जहाँ तक भोज्य पदार्थों की प्रकृति का प्रश्न है, अधिकांश उत्तरदाता कृषकों को जो भी कुछ मिल जाता है उसी का सेवन कर लेते हैं, परन्तु ऐसी प्रवृत्ति उच्च आय वर्ग में नहीं है । यथा जिन कृषकों की आय रुपये 3000 प्रतिमास या इससे ऊपर है, 80.0 प्रतिशत विटामिन युक्त आहार ग्रहण करते हैं । समग्र तथ्यों के गहन विश्लेषण के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि लोगों की जीवन-शैली में परिवर्तन हो रहा है, किन्तु इसकी दर मन्द और असन्तोषप्रद है |

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय में कृषकों के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य एवं भौतिक दशाओं के अध्ययन से परिलक्षित होता है कि बहुत से किसान जो कृषि कार्य में संलग्न हैं, प्रायः 41 से 51 वर्ष आयु समूह के हैं । बहुसंख्यक विवाहित एवं एकांकी परिवार से जुड़े हैं। पारिवारिक परिदृश्य में अधिकांश कृषि के साथ स्थानीय नौकरी एवं व्यवसायों से जुड़े हैं तथा 1000 रुपये से 3000 रुपये प्रतिमाह की आय एवं 3 बीघे से 15 बीघे तक के भूमि स्वामित्व वाले हैं। जीवन में वित्तीय संकट का सामना कर्ज लेकर

अथवा सम्पत्ति गिरवी रख कर करते हैं । विकास कार्यक्रमों की प्रतिक्रिया संकेत करती है कि इनमें चेतनात्मक जागृति बढ़ी है फिर भी यह प्रवृत्ति संतोषजनक नहीं है। आर्थिक विकास एवं सम्पन्नता का स्तर बढ़ा है। अशिक्षितों की तुलना में शिक्षित कृषकों का उन्मेष रेडियो और टेलीविजन सिनेमा कार्यक्रमों के प्रति अधिक दिखाई पड़ता है । अशिक्षित एवं अन्य शिक्षित कृषक अवकाश काल का उपयोग कृषिजन्य दिनचर्या में ही व्यतीत करते हैं। युवा पीढ़ी की तुलना में प्रौढ़ोत्तर और वृद्ध पीढ़ी अत्यधिक परम्परानिष्ठ एवं धार्मिक पूजापाठ में संलग्न पाई गयी । छुआछूत के अभ्यास और व्यवहार में वृद्ध पीढ़ी का ही बाहुल्य है । उच्च शिक्षा प्राप्त युवा वर्ग गांवों से निष्क्रमित हो कर नगरों में वेतन भोगी नौकरी से जुड़ता जा रहा है जो नगरीय संस्कृति की छाप के फलस्वरूप अस्पृश्यता और छूत जैसे व्यवहार जैसे मानसिकता से परे समामेलिटा व्यक्तित्व प्रतिमान ग्रहण कर रहा है। गांवों के अधिकतर मकान कच्चे अथवा कच्चे-पक्के मिश्रित हैं। प्रायः 20 बीघे और अधिक के भूमिस्वामित्व वाले कृषकों के ही मकान पक्के हैं। अधिकांश कृषकों को जो कुछ भोजन मिलता है उसी का सेवन करते हैं। भोज्य पदार्थ और पोषक तत्त्वों के विषय में स्वास्थ्य एवं चिकित्सकीय उन्मेष अब भी संतोषप्रद नहीं है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Parsons, T. and Baees F., Family: Socialization and Interaction Process, RKP, London, 1957.

2. Mannheim, Karl; Man and Society in an Age of Reconstruction, Harcourt Brace Co., New York 1940.

3. Mechanic, David; Medical Sociology, The Free Press, Macmillan Publishing Co. Inc., New York, 1978.

4. Mathews G.M.; Health and Culture in a South Indian Village, Sterling, New Delhi, 1979.

5. Durkheim, E.; La Suicide, Passian, Paris, 1912.

6. Sorokin, P.A.; Social and Cultural Mobility, The Free Press, Glencoe, 1927.

7. Anderson, C.A.; A skeptical note on the relation of vertical mobility to education, American Journal of Sociological Research, LXVI, 1961.

8. Srinivas, M.N.; Social Change in Modern India, Barkeley and Los Angeles, University of California Press, 1966.

9. Rao, M.S. A.; Urbanization and Social Change, Orient Longman, New Delhi, 1970.

10. Parsons, T.; The Structure of Social Action, New York, McGraw Hill Company, 1937 and T. Parsons and Edward; Shills, Towards a General Theory of Action, Cambridge: Harvard University Press, 1962.

11. Marry, August Neil; Values and Interest in Social Change, Ellwood, New Jersey, Princeton University Press, 1965,

12. D'Souza, Victor; Social Inequalities and Development in India, Economic and Political Weekly, 19 May 10, 1975,

13. Pya Lucian W.; Communication and Political Development, New Jersey, Princeton University Press, 1963.

14. Das, A.K.; Occupational Pattern through Generation in Rural Areas of West Bengal, Scheduled Castes and Scheduled Tribes, Welfare Department of *West* Bengal,

15. Lerner, Daniel; Communication System and Social System, Behaviour Science, Vol. I & II, No. 4, Oct., 1957.

16. Lerner, Daniel; The Passing of a Traditional Society, Free Press, Glencoe, 1964,

-: The Politics of Developing Areas, Princeton University Press, Princeton, 1960.

17. Schrame, Wilbur; Mass Media and National Development, The Role of Information in the Developing Countries, Stanford University Press, Stanford, California, UNESCO, Paris, 1964.

18. Hicks, H.C. and Gullett; Organisation Theory and Behaviour, Tokyo, McGraw Hill Kogakustia Ltd., 1975,

19. Srinivas, M.N.; Caste in Modern India and Other Essays, Asia Publishing House, Bombay, 1962.

20. Singh, Y.; Modernization of Indian Tradition, Thomson Press (India) Ltd. Faridabad (First Published 1973) 1977.

21. Roberts, D.; The Mass Media Play a Role in Political Socialization, Australian and Newseland, Journal of Sociology, 1974,

22. Bhambhari, C.P.; The Urban Voter: Municipal Election in Rajasthan: An Empirical Study, National Publishing House, New Delhi, 1973, - The Study of Scheduled Caste : Students of College in Eastern UP, Research Project sponsored by Indian Council of Social Science Research, New Delhi, 1973-74, Department of Sociology, BHU, Varanasi.

23. Stainley, G.H.; The Sociology of Religion in United States: A Review of Theoretical Oriented Research, New York, 1965,

24. Radhakrishnan, S.; Religion and Society, George Allen and Unwin Limited, London, 1947,

25. Singh, Haribansh; Approaches to the Study of Religion, Punjab University, Patiala, 1969. 26. Srinivas, M.N.; Social Change in Modern India, Barkeley and Los Angeles, University of California Press, 1966.

27. Singer, Milton; The Great Tradition in a Metropolitan Centre-Madras, Traditional India, The Free Press of Glencoe, New York, 1966.

28. Bellah, Robert, N.; Reflection on the Protestant Ethnology in Asia, Free Press of Glencoe, New York, 1965.

29. Dube, S.C.; Indian Village, Allied Publishers, Bombay, 1967. 30. Leach, O.M.; The Politics of Untouchability, Columbia University Press, New York, 1969.

31. Pandey P.N.; Educational and Social Mobility, Days Publishing House, Delhi, 1988.

32. Level, H.R. and Clark, F.G.; Preventive Medicine for the Doctor in this Community, McGraw Hill, New York, 1965.

33. Dobious, R.; Man and His Environment, Pan American Health Organization, Scientific Publication, No. 131, Washington D.C., 1966.

34. Maye, J.M.; The Ecology of Human Diseases, Environments of Man (ed.), J.B. Breslev, Addison Wisley Publication Company, Massachussets, 1968,

35. Park, J.E. and Park, K.; The Textbook of Preventive and Social Medicine, 1985,

36. Karve, Irawati; Social and Cultural Factors in Environmental Sanitation in Rural India: A Report on the Conference held in New Delhi on September 10, 1956, Ministry of Health, Govt. of India.